Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

जीवन दर्शन मूलभूत सिद्धान्त एवं आज के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता

डॉ0 लखिन्द्र कुमार
एम.ए.,पीएच.डी., (प्राकृत–जैनशास्त्र)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

Article Info
Volume 3 Issue 5
Page Number: 81-85
Publication Issue :
September-October-2020

Article History
Accepted : 15 Oct 2020
Published : 26 Oct 2020

भारतीय संस्कृति में दो परम्पराएँ अनादिकाल से चली आ रही है। 1. वैदिक एवं श्रमण परम्परा श्रमण–परम्परा भी अति प्राचीनकाल से चली आ रही है। इसके प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव हुए तथा 24वें एवं अन्तिम तीर्थकर महावीर। महावीर ज्ञानयोग थे। ज्ञानयोग की प्रवृति अन्तराभिमुख। ज्ञानयोग में रस की प्राप्ति ज्ञान से होती है। ज्ञान में रस रहते हुए कर्म करने पर भी कर्म का कर्ता नहीं कहा जाता। ज्ञान निवृतिरूप होता है। जैसे–जैसे निवृति की वृद्धि होती है, प्रवृति का स्वतः ह्रास होते जाता है। ऐसे ही आत्मसाधना कहा जाता है। महावीर ने कर्म की प्रवृतिमार्ग का त्याग करके निवृति मार्ग में आरूढ़ होने के लिए गृह–त्याग कर वन का आश्रय ग्रहण किया। क्योंकि निर्वाण–प्राप्ति का मार्ग दूसरा है भी नही। भोगी एवं योगी के मार्ग में अन्तर तो होगा ही। सम्भवतः इसी को लक्ष्य करके श्री कृष्ण ने अर्जुन से श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है–

''या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।''

यही कारण था कि योगी महावीर ने आत्मसाधना करके कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी–अमावस्या के प्रातः काल में सूर्योदय के पूर्व ही निर्वाण की प्राप्ति का समय चयन किया।

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

महावीर ने भारतीय चेतना को जागृत एवं उर्ध्वमुखी बनाये रखने का प्रयत्न किया। आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाने तथा शाश्वत् सुख की प्राप्ति के लिए उन्होंने अहिंसा, इन्द्रिययनिग्रह, त्याग और समाधि का स्वयं आचरण किया और बाद में दूसरो को देशना–उपदेश द्वारा मार्ग दर्शन कराया। महावीर श्रमण–संस्कृति के प्रबुद्ध, सबल, प्रभावशाली और अन्तिम प्रतिष्ठाता–प्रचारक थे।

मानवीय जीवन की उत्कृष्टता के लिए धर्म एवं दर्शन दोनों की अनिवार्यता है। मनुष्य चिन्ता के सागर में जब गोते लगाने लगता है। तब उसको वह स्वकीय जीवन में प्रयोग करता है। उसी से धर्म उत्पन्न होता है। धर्म एवं दर्शन की उत्पति वस्तुतः मानवीय समस्याओं के समाधानार्थ है। धर्म में बुद्धि, भावना और क्रिया ये तीन तत्व होते हैं। बुद्धि से ज्ञान, भावना से श्रद्धा, और क्रिया से आचार की प्राप्ति होती है। इसे ही महावीर ने सम्यक् श्रद्धा, सम्यक ज्ञान और सम्यक् चरित्र की संज्ञा दी है। धर्म और दर्शन का सम्बन्ध किसी क्षेत्र विशेष से नहीं होकर पूरी दूनिया से होता है। जीवन को गतिशील बनाने के लिए एवं मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए इसकी परम आवश्यकता है। भौतिकवाद से ऊबकर सांसारिक प्राणी अध्यात्म का शरण ग्रहण करता है। वस्तुतः मनुष्य को शान्ति की उपलब्धि धर्म एवं दर्शन की शरण लेने पर ही होती है। दर्शन मानवीय अनुभूतियों की तर्क– पूर्ण व्याख्या करके जगत् के आधारभूत सिद्धान्तों की तर्क–पूर्ण व्याख्या करके जगत् के आधारभूत सिद्धान्तों की खोज करता है। यह अध्यात्मिक मूल्यों के द्वारा समस्त जगत् का विवेचन करता है। जीवन के विविध मूल्यों का निर्धारण एवं उनकी उपलब्धि का साधना धर्म दर्शन ही है। इनका विश्वास मानवीय ज्ञान की योग्यता, यथार्थता, एवं चरमोपलब्धि में है। धर्म में आध्यात्मिक की आवश्यकता पड़ती है, जबकि दर्शन बौद्धिकता पर आश्रित है। आत्मनिष्ठा, विवेक और आत्मनिष्ठ आचार जीव के व्यक्तित्व के विकास के आधार–स्तम्भ हैं। तीर्थकर महावीर से पूर्व धर्म एवं दर्शन के व्याख्याता तेईस तीर्थकर हो चुके हैं। उन्होंने मुक्ति की साधना एवं प्रकृति के विभिन्न रहस्यों की व्याख्याएँ की है। साथ ही मानव जीवन को सुन्दर, सरस, मधुर एवं व्यवस्थित बनाने का मार्ग–दर्शन कराया। व्यक्ति की सत्ता, स्वाधीनता एवं सह–अस्तित्व की भावना का प्रवर्तन जैनधर्म प्रवर्तकों द्वारा ही होता है। सहिष्णुता, उदारता और धैर्य के संतुलन के साथ वैज्ञानिक सत्यान्वेषण प्रादुर्भाव भी इन्हीं के द्वारा होता है। इनके संदेश से प्रत्येक जीव अपने भाग्य का विधायक बन सतत् पुरूषार्थ द्वारा परमात्मतत्व को प्राप्त कर सकता है। जो क्रिया अहिंसा मूलक, राग, द्वेष एवं प्रमाद रहित है, वह सम्यक है, एवं हिंसा मूलक क्रिया मिथ्या है। मिथ्या–क्रिया कर्म –बन्धन का कारण है और सम्यक क्रिया कर्म क्षय का। मानवीय जीवन के दैनिक व्यवहार में अहिंसा अनिवार्यतम

तत्व है। तीर्थकारों के द्वारा पार्थिव जीवन को अपार्थिव बनाते हुए अध्यात्म साधना एक विशुद्ध एवं सुपरीक्षित पथ का निर्धारण भी कर दिया जाता है। सत्यान्वेषण, आत्मसाक्षत्कार एवं सुलझी हुई अर्न्तदृष्टि से मानवता की प्रतिष्ठा होती है। ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, आस्था एवं आत्मशोधन की प्रक्रिया भी प्राप्त होती है। जीवन के सम्यकत्व का उपदेश हमें तीर्थकरों से ही प्राप्त होते हैं। मन की शुद्धता का उपाय भी इन्हीं से प्राप्त होता है।

श्रमण

संस्कृति में वैरागी, हितोपदेशी एवं सर्वज्ञ तीर्थकर की प्रतिष्ठा कर मानवता को महता दी गयी है। दीपक स्वयं प्रकाशित होता है, दर्पण स्वभावतः स्वरूपालोकन कराता है। साधना के मार्ग पर चल कर ही व्यक्ति सुख और शान्ति को प्राप्त कर सकता है। एकाग्र में स्व की खोज ही मानव की मूल जीवनोपलब्धि है।

एकान्त

साधना से मैत्री भावना का सर्वोच्च आदर्श प्राप्त होता है तथा कंटकों से प्रेम हो जाता है। पीड़क के प्रति भी एक सहज करूणा एवं कल्याण की कामना विद्यमान हो जाती है। मनुष्य जो पाता है, अपने कर्म का फल होता है, जो भोगता है, वह भी स्वकृत–भोग ही है। दुःख, सुख का कर्ता मनुष्य स्वयं होता है, दूसरा नहीं। दूसरा निमित भले ही हो सकता है कर्ता नहीं। कर्ता स्वयं आत्मा होती है, वही जो करती है, वह पाती है। मनुष्य साधना, संयम एवं ज्ञान के द्वारा विष से अमृत, वैर–विरोध से प्रेम एवं सहयोग, विषमता से समता एवं अशांति से शांति को प्राप्त कर सकता है। यह भी एक नहीं अनेक जन्मों की साधना का फल होता है। सच्चाई तो यह है कि कर्म की कालिमा सरलतापूर्वक धोयी नहीं जा सकती; बल्कि अनेक जन्मों की सत्य+अहिंसा की साधना करके किया जा सकता है। सत्य एवं अहिंसा की प्रकाश की किरणें मानव के रोम–रोम से प्रादुर्भूत होने लगती है। इन्द्रियों की दासता मिट जाती है और उसे राग एवं द्वेष पर विजय मिल जाती है। जीवन का मुख्य लक्ष्य होता है, शरीर का प्रत्येक परमाणु योगनिरत पूर्णता और विशुद्धता पाकर शुद्ध पुद्गल स्कन्धरूप हीरक की प्रभा को भी मन्द कर देगा। हजारों सूर्य की किरणों को भी उनका तेज लज्जित कर देता है। शुद्धात्का हो जाने पर शारीरिक विकार समूल नष्ट हो जाते हैं। जीवन का आदर्श होत है, आभ्यन्तरिक राग–द्वेष का लोप हो जाना एवं बाह्य क्षुधा, तृषा, जन्म–मरण, राग–शोक, भय–आश्चर्य आदि विकार भी नष्ट हो जाये। मानव में जब शुद्ध, बुद्ध, परमोत्कृष्ट प्रत्यक्ष दर्शन होने लगे, तो आधि–व्याधि स्वयंमेव समूल नष्ट हो जाती है। उसके प्रभाव से चराचर जगत् प्रेम–गंगा में गोते लगाने लगते है। ऐसी परिस्थिति में सांसारिक प्राणी ही नहीं, स्वर्गीय देवगण भी उत्कृष्ट मानव–तीर्थकरादि के दर्शनार्थ आने लगते हैं। ऐसी परिस्थिति वह धर्मोपदेशक के प्रतिष्ठित पद पर आरूढ़ हो जाता है और

सांसारिक जीवों के कलमषों को धोकर शुद्ध बना देता है। अब मन भौतिकता के भटकाव से विरम कर आध्यात्मिकता में प्रतिष्ठित हो जाता है।

मानव का जन्म बड़ी महत्वपूर्ण है, जिसमें व्यक्ति जन्म–मरण के चक्र से मुक्ति प्राप्ति के संकल्प का साधना करता है। बीते असंख्य जन्मों का कोई मूल्य नहीं, जिनमें चेतन के स्वरूप का बोध की प्राप्ति का यत्न नहीं किया गया। जीवन के दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं–1.मर्त्य एवं 2. अमर्त्य। जिस जीवन में क्षण–भंगुर विषय–भोगो कि तृप्ति का प्रयत्न किया जाता है। वह मर्त्य जीवन एवं मूल्यहीन होता है। जीवन वही मूल्यवान है, जिसमें अमरता हो। इसे अमर्त्य इसलिए कहा जाता है कि इसमें धर्म–अंकुर प्रस्फटित होता या धर्म का बीज बोया जाता है। सचमुच वही मनुष्य का जन्म सफल है, जिसमें आत्मोत्थान की प्रेरणा प्राप्त हो, जिस जीवन से साधना–मार्ग आरंभ हो और जीवन का तिमिर छिन्न होकर ज्ञान का आलोकदीप प्रज्जवलित हो उठे। मनुष्य के दुःख का कारण हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापकर्म हैं। यदि मानव इससे अपनी जीवनधारा को बदल दे तो निस्संदेह उसे सुख–शान्ति की प्राप्ति होगी। पंचभौतिम शरीर का अंत इहलोक में ही हो जाता है, इसमें का वक्ता हंस इसे छोड़कर उड़ जाता है। मानव–जन्म दुर्लभ है, इसे पाकर हिंसादि में नहीं लगाना चाहिए। पापकर्मों, मोह का उदय होता है और मोह ही दुःख का कारण है।

मानव जीवन प्रमुख चार उद्देश्य है–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष परम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन धर्म है। काम लौकिक जीवन का उपादेय तत्व है और इसका साधन अर्थ है। अर्थ मानव को स्वाभाविक प्रवृतियों की ओर प्रेरित करता है। वह धनार्जन को इच्छापूर्ति के लिए उपयोगी मानते हुए भी अन्याय, अत्याचार और पर–पीड़न को स्थान नहीं देता। वह मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों का नियंत्रण कर उसे मनुष्य बनने के लिए उत्प्रेरित करता है।

सामाजिक व्यवस्था में धर्म अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली अवधारण है। धर्म मानव के समस्त इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को नियमित एवं व्यवस्थित करता है। अतएव धर्म, वह जो मानव जीवन की विविधताओं भिन्नताओं, अभिलाषाओं, लालसाओं, भोग, त्याग, मानवीय आदर्श एवं मूल्यों को नियबद्ध कर सकता और नियमितता प्रदान करे। वस्तुतः धर्म जीवन का एक ऐसा तरीका है जो कार्यों और क्रियाओं को संयोजित और नियंत्रित करता है। इसके अभाव मानव का जीवन पशु जीवन की कोटि में सम्मिलित हो जाता है अतएव जीवन को सुव्यवस्थित और नियंत्रित करने के लिए धर्म की परम आवश्यकता है।

वर्तमान समाज अनियंत्रित एवं अव्यवस्थित हो गया है। इच्छाएँ और आवश्यकताएँ मनुष्य को गुलाम बनाती जा रही है। मनुष्य में त्याग की प्रवृति

का लाभ एवं भोग की प्रवृति की वृद्धि हो रही है। धर्म को गौण करने की इच्छा की पूर्ति में लगा हुआ मानव इन्द्रियों एवं उसके विषयों का दास बनते जा रहा है। अतएव चारों ओर अशान्ति, दुःख, चिन्ता, भय एवं शोषण का वातावरण व्याप्त है।

अतएव आवश्यकता है इन्द्रियों एवं उसके विषयों के प्रति मन को सावधान करते हुए धर्म को पुरष्कृत करते हुए जीवन के उस परम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर उन्मुख करने की। इससे व्यक्ति स्वयं सुख शान्ति एवं निर्भय पूर्वक जीवन जीयेगा तथा समाज भी सुखी, सुशान्त एवं निर्भीक होकर सुव्यवस्थित हो जायेगा। समाज व्याप्त भय, लुलोप्ता, भ्रष्टाचार समाप्त हो जायेगा और पुनः हम महावीर के युग में राम के युग में आ जायेंगे। सभी प्राणि सुखी एवं शान्त जीवन की कामना करते हैं। उसके प्राप्ति का मुख्य मार्ग धर्म एवं इन्द्रियों पर नियंत्रण ही है।

संदर्भ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता–अध्याय–2, श्लोक–69.
2. श्रीमद्भगवद्गीता–अध्याय–4, श्लोक–13.
   चातुर्णव्यं नया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
3. प्रवचनसार/गाथा सं0–100
   न भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो।
   उत्पादो वि य भंगो ण विणा धोत्वेण अत्थेण।।
4. प्रवचनसार, गाथा 100 की अमृतचन्द्र–टीका।
5. उत्पादद्रव्य ध्रौव्ययुक्तं सत्–तत्वार्थसूत्र 5/30.
6. सवम्भूस्त्रोत, पदय–24.
   न सर्वथा नित्यायु दैत्यपैति न च क्रियाकारमत्र युक्तम।
   नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुदगलभाव तोडस्ति।।
7. प्रवचनसार–ज्ञानाधिकार गाथा–46–59.
   अष्टशती–कारिका 174.
   जयधवल–प्रथम भाग पृ0 66.